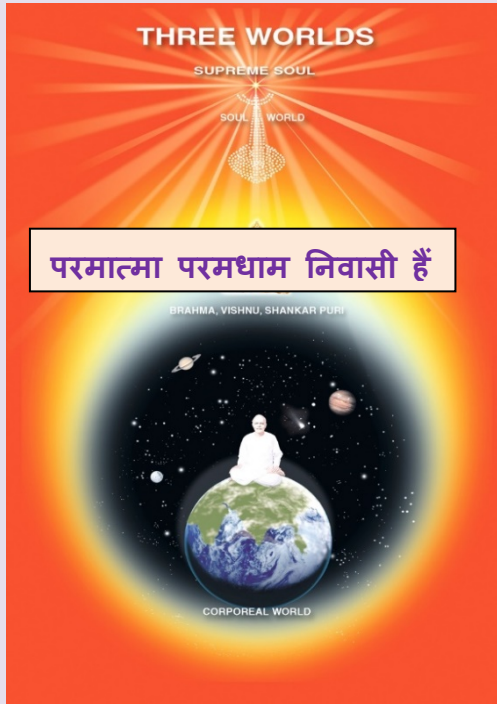


ईश्वर की सर्वव्यापकता भावनात्मक या सैद्धांतिक

एक प्रेमिका अपने प्रियतम की याद में जब मग्न हो जाती है, तब उसका प्रियतम वहाँ उपस्थित न होते हुए भी, उसके सान्निध्य का, उसके साथ के प्रेम-संपन्न आदान-प्रदान का वह सहज अनुभव करती है। यह अनुभूति वह भावनात्मक स्तर से अपने मानस पटल पर करती है। उसी तरह एक उच्च कोटि का भक्त जब अपने ईश्ट की याद में तन्मय हो जाता है, तब उसकी नजर जहाँ जाती

है, वहाँ-वहाँ उसको अपने ईश्ट का दर्शन होता है। मीराबाई इतनी हद तक श्रीकृष्णमय थीं वह अपने मानस पति श्रीकृष्ण की सर्वत्र अनुभूति कर सकती थीं। श्रीकृष्ण के मुखड़े की माया ऐसी लगी थी कि वो उनके मुखड़े का दर्शन करते उपराम रहती थीं। धर्मग्रंथ भागवत में अतिन्द्रिय सुख में खोई रहती गोपीओं का वर्णन भी ऐसा ही है। प्रत्येक गोपी इतनी श्रीकृष्णमय हो जाती थी कि प्रत्येक को ऐसा एहसास होता था कि “श्रीकृष्ण व्यक्तिगत रूप से मेरे ही साथ हैं।” ऐसा सोचकर गोपीयाँ अपनी सुधबुध भूल जाती थीं। महारास ऐसे ही अनुभूतियों का एक उदाहरण है।

अनेक भक्तों की, साधकों की और तपस्वीयों की ऐसी भावनात्मक अनुभूतियों के कारण हम सब परमात्मा को “सर्वव्यापक हैं” ऐसा मानने लगे और कह दिया कि परमात्मा सर्वव्यापक हैं, अर्थात् कण-कण में हैं। “कण-कण में भगवान” नाम की एक फिल्म भी बना दी, परंतु यदि हम भावनात्मकता से थोड़ा उपर उठकर स्वयं भगवान के दिए गए गीताज्ञान के आधार



पर और सैद्धांतिक दृष्टि से विचार करें तो ख्याल आएगा कि यह बात सत्य से कितनी दूर है | इस संबंध में हमें कुछ निम्न लिखित बिन्दुओं पर सोचना चाहिए।

- यह समग्र जड़सृष्टि तथा जीवसृष्टि परमात्मा की रचना है और स्वयं परमात्मा उसके रचयिता हैं, ऐसा हम स्पष्ट रूप से मानते हैं। अगर परमात्मा सर्वव्यापी है अर्थात् कण-कण में व्याप्त है, तो समग्र सृष्टि तथा परमात्म दोनों एक हो गए, इससे तो रचना और रचयिता का भेद ही समाप्त हो जाता है। परंतु गीता में, अपना स्पष्ट परिचय देते हुए, परमात्मा कहते हैं कि मेरा अपना स्वतंत्र अस्तित्व है, मैं जगत का नियंता हूँ, समग्र सृष्टि और प्रकृति मेरी रचना है और वो मेरे अधिन है। मेरा अपना नाम, रूप, गुण, कर्तव्य तथा धाम हैं। विश्व के सभी महान धर्मस्थापकों ने भी प्रकृति से अलग परमात्मा के स्वतंत्र अस्तित्व को स्वीकार किया है।

- श्रीमद् भगवद् गीता में भगवान अपने निवास स्थान का वर्णन करते हुए कहते हैं कि मैं इस भौतिक दुनिया से उपर आए हुए परमधाम का निवासी हूँ, जिसे सूर्य या चंद्र का प्रकाश भी प्रकाशित नहीं कर सकता है | धर्म की अति ग्लानि के समय मैं अपने परमधाम को छोड़कर इस भौतिक दुनिया में आता हूँ और दुष्टों का विनाश कर, सत् धर्म की स्थापना करता हूँ। इस संदर्भ में भी परमात्मा को सर्वव्यापी मानना कितना योग्य है?

- परमात्मा को हम हमारे परमपिता, परमशिक्षक और परम सदुगुरु मानते हैं, तो कोई पिता अपने पुत्र में या कोई शिक्षक अपने विद्यार्थी में या कोई गुरु अपने शिष्य में क्या व्याप्त हो सकता है? सर्वव्यापी की मान्यता से दोनों के बीच का यह भेद समाप्त हो जाता है।
- परमात्मा की सर्वव्यापकता का एक अर्थ ऐसा भी होता है कि मेरे में भी परमात्मा है अर्थात् मैं स्वयं परमात्मा हूँ। यदि ऐसा ही होता तो मुझे दर-दर भटक कर ऐसा कहने की जरूरत ही क्यों होती कि “हे प्रभु, दर्शन दो” या “हे प्रभु, कृपा करो” और वो भी उपर आसमान की ओर हाथ करके? एक तरफ हम मंदिर में शिवलिंग की स्थापना कर उनकी परमपिता के रूप में पूजा करते हैं और दूसरी तरफ स्वयं को शिव भगवान समझकर “शिवोहम्” की रट लगाते हैं। क्या यह विरोधाभासी नहीं है?
- परमात्मा को हम सर्वगुणों के सागर, सर्व शक्तियों के सागर, दया तथा करुणा के सागर कहते हैं। प्रत्येक वस्तु या व्यक्ति जहाँ उपस्थित होता है, वहाँ उसके गुण प्रत्यक्ष हुए बिना रह नहीं सकते अर्थात् जहाँ गुणों है, वहाँ गुण हैं। उदाहरण के लिए, गरम किया गया लोहा उसकी गरमी के गुण को प्रत्यक्ष किए बिना रह नहीं सकता। उसी तरह अगर परमात्मा सर्वव्यापी होते तो उनके सर्वगुण तथा शक्तियाँ प्रत्येक स्थान पर प्रत्यक्ष होने चाहिए, परंतु आज तो दुनिया की ऐसी परिस्थिति है कि परमात्मा के गुण या शक्ति का अंश भी ढूँढना मुश्किल है। यदि कोई व्यक्ति, दूसरे व्यक्ति का खून करे, या एक पुरुष स्त्री पर बलात्कार करे

तो क्या हम ऐसा मानेंगे कि एक परमात्मा दूसरे परमात्मा का खून करते हैं या बलात्कार करते हैं?

- विश्वबंधुत्व की भावना को सभी धर्मों ने स्वीकार किया है। हम स्पष्ट रूप से मानते हैं कि हम सभी मनुष्य आत्माएँ एक ही पारलौकिक परमपिता परमात्मा की संतान हैं और आपस में वास्तविक रूप से भाई-भाई हैं अर्थात् सर्व जीवात्माएँ और परमात्मा अलग-अलग हैं, परंतु उनके बीच पिता-पुत्र का संबंध अवश्य है। अगर परमात्मा सर्वव्यापी है अर्थात् आत्मा परमात्मा एक ही है तो हमें विश्वबंधुत्व की नहीं परंतु विश्वपितृत्व की बातें करनी चाहिए।

उपरोक्त बातों से यह स्पष्ट होता है कि सैद्धांतिक रीति से परमात्मा को सर्वव्यापक मानना योग्य नहीं है। जगतपिता, जगत नियंता तथा जगत नियामक होने के कारण परमात्मा की सत्ता समग्र ब्रह्मांड में जरूर व्याप्त है ऐसा कह सकते हैं और ऐसा अनुभव भी कर सकते हैं। ईश्वर के प्रति असीम, निर्मल तथा निःस्वार्थ प्रेम और उनके प्रति का समर्पण भाव हमें उनकी सर्वत्र उपस्थिति का अनुभव भावनात्मक स्तर पर अवश्य करा सकता है, इसलिए ईश्वर की सर्वव्यापकता भावनात्मक रीति से योग्य है, परंतु सैद्धांतिक रीति से नहीं। इस लेख द्वारा लेखक का किसी की भी आस्था या श्रद्धा को ठेस पहुँचाने का लेशमात्र भी आशय नहीं है।

----- 000 -----

ब्रह्माकुमार प्रफुल्लचंद्र ;

मो. +91 98258 92710